निरोग जीवन का राजमार्ग

*

लेखक :
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना
गायत्री तपोभूमि-मथुरा-२८१००३
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

*

२००६ [मूल्य : 5.00 रुपये

विषय-सूची

१. स्वास्थ्य स्वाभाविक है	४
२. प्रकृति हमारी भूलें सुधारती है	८
३. रोग से डरने की आवश्यकता नहीं	१५
४. रोगों तथा अस्वस्थता को निमंत्रण	१६
५. स्वस्थ रहने की दिनचर्या	२६
६. आत्महत्या मत कीजिए	४०
७. हास्योपचार सर्वोत्तम है	४५

करता देखते हैं, उनका मधुर गुंजन हमारे हृदय सरोवर को तरंगित कर देता है। उनका रंग, भाव-भंगिमा, शरीर की बनावट हमारे मन को मोह लेती है। कौन इन्हें इतना सुंदर, फुर्तीला-सुरीला रखता है ? कौन इनके स्वास्थ्य की खैर-खबर रखता है ? कौन इन्हें आरोग्यता के संबंध में पाठ पढ़ाता है ? और जब ये बीमार पड़ते हैं, तो कौन इनकी दवा-दारू करता है ? हमने पक्षियों को बीमारी से अकाल में मरते नहीं देखा। अधिकांश को अन्य पक्षी या मनुष्य मारकर खाते हैं। वे स्वयं अपनी मूर्खता से बीमारी बुलाकर बहुत कम मरते हैं। उनमें पूर्ण स्वस्थ्य रहने और आरोग्य का मधुर आनंद लाभ करने की सामर्थ्य है। प्रकृति उनके शरीर की रक्षा करती है, स्वयं शरीर के अंदर एकत्रित हो जाने वाले विषों को निकालने का प्रयत्न करती है, शरीर के संवर्धन का पूरा-पूरा विधान रखती है। वही उनका डॉक्टर, हकीम या वैद्य है।

प्रकृति की प्रचुरता—प्रकृति में प्रचुरता है, हर प्रकार की प्रचुरता है। आनंद, स्वास्थ्य, आरोग्य की इतनी अधिकता है कि हम उसका सीमा बंधन नहीं कर सकते। स्वास्थ्य की उस अधिकता के कारण ही प्रकृति के अनेक पशु-पक्षी, जीव-जंतु जीवन का आनंद लेते हैं; जल, वायु, प्रकाश, भोजन से जीवन-तत्त्व खींचकर वे दीर्घ जीवन के सुख लूटते हैं।

प्रकृति के कण-कण में, पत्तियों, फलों, पौधों तथा जल की प्रत्येक बूँद में आरोग्य भरा हुआ है। वायु के प्रत्येक अंश को, जिसे हम अंदर खींचते हैं, जल के प्रत्येक घूँट में, जिसे हम पीते हैं, फल और तरकारियों के कण-कण में स्वास्थ्य और बल हमारे लिए संचित है। प्रकृति के पास जीवन को सर्वांग रूप से स्वस्थ रखने के लिए सभी उपकरण हैं।

प्रकृति में वैचित्र्य है। अपने-अपने स्वभाव, रुचि, काल, अवस्था, परिस्थिति के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति, जीव-जंतु, पक्षी, प्रकृति से

पेट ही बढ़ा हुआ है, नेत्र सुंदर और चमकदार हैं, त्वचा कोमल और लाल है, फेफड़े परिश्रम सहन कर लेते हैं और गहरी नींद और आराम देते हैं, स्वस्थ जल से (सोडा, लेमन, शराब, चाय, शरबत से नहीं) जिनकी प्यास शांत हो जाती है, चूरण चटनी पर जिसकी जिह्वा नहीं लपलपाती, जिनके स्वभाव में न चिड़िचिड़ापन है, न क्रोध, उतावलापन, उदासी या निस्त्साह—ऐसे स्वस्थ मनुष्य को ही पूर्ण सुंदर कहना युक्तिसंगत है।

श्री विट्ठलदास मोदी के शब्दों में 'मोर के नीले-हरे पंख, सिंह की अयाल, बारहसिंघे के उलझे हुए लंबे सींग, सांड़ के चौड़े कंधे, मुर्गे की कलगी, साँप का चौड़ा फन, बिलाव की लंबी मूँछ को सुंदर मानने से कौन इनकार कर सकता है ? पशु-पक्षियों में सारी सुंदरता नर वर्ग को मिली है। प्रकृति ने जहाँ नर वर्ग को सुंदरता प्रदान की, वहाँ शक्ति भी दी। वस्तुतः पुरुष का सौंदर्य उसकी शक्ति में निहित है। उसका सौंदर्य उसकी शक्ति द्वारा प्रस्फुरित होता है।"

पुरुष हो या स्त्री—यदि वह पूर्ण स्वस्थ और सुंदर बना रहना चाहता है या कुरूप से सुरूप होना चाहता है, तो उसे प्रकृति का आश्रय ग्रहण करना होगा। प्रकृति के नियमों का पालन करना होगा। व्यायाम और प्राकृतिक भोजन के द्वारा, शरीर की प्रत्येक मांसपेशी को संतुलित रूप में विकसित करना होगा, शक्ति का अर्जन करना होगा—तभी हम सुंदर बन सकेंगे। प्रकृति में ही वास्तविक सुंदरता विद्यमान है।

चेहरे पर लाल रंग, पाउडर, क्रीम पोतने से क्या लाभ ? वह तो पानी से धुल जाएगा। यदि शरीर में मांस, स्वस्थ रक्त, उत्तम स्वास्थ्य और आरोग्य नहीं, तो उसे रेशमी कपड़ों या आभूषणों से अलंकृत करने से क्या सौंदर्य प्राप्त हो सकेगा ? वास्तविक सौंदर्य, जो चिरस्थायी है, जिसमें ईश्वरत्व प्रकट होता है, वह प्राकृतिक सौंदर्य ही है।

जीवन की आधारशिला क्या है ? इसके लिए कुछ ज्ञातव्य बातें यहाँ दी जाती हैं—

(१) **डीलडौल**—स्वस्थ मनुष्य का आकार संतुलित होना चाहिए। कद न काफी ऊँचा हो, न शरीर पतला-दुबला अस्थिपिंजरवत् हो, न भारी-भरकम मांस से लटकता हुआ पोपला हो, प्रत्युत संतुलित रूप से प्रत्येक अंग विकसित हों, शरीर की मशीन का प्रत्येक कलपुर्जा ठीक काम करता हो। प्रशस्त-उन्नत ललाट, चमकदार नेत्र, माथे व गालों पर स्वाभाविक रक्त की लालिमा हो, सिकुड़न का नाम तक न हो। पाँव व जाँघ मजबूत और शरीर का भार वहन कर सकने वाले हों। शरीर श्रम व मौसम के परिवर्तनों को संभाल सके, रोग से लड़ सके, आमाशय अपना कार्य उचित रीति से करता रहे।

(२) **आंतरिक अवस्था**—पाचन क्रिया अपना कार्य ठीक से करे, शुद्ध लाल खून निर्मित हो, शरीर से मल-विसर्जन कार्य अपनी स्वभाविक गति से होता रहे। जो भोजन खाया जाए, वह शरीर को परिपुष्ट एवं स्वस्थ रखे, अपच या दस्त से निकल न जाए। कभी अपच, कभी कब्ज, दस्त, पेट दर्द इत्यादि न हों। खाया हुआ भोजन चार-पाँच घंटे में पच जाए। खाना खाते समय रुचि एवं स्वाद स्वास्थ्य के सूचक हैं। भोजन के उपरांत आलस्य या नींद नहीं आनी चाहिए। चटपटी चीजों पर मन न चले, साधारण भोजन में ही मजा आये।

(३) **हृदय तथा फेफड़े**—शरीर के दो महत्त्वपूर्ण अंग हृदय तथा फेफड़े हैं। स्वस्थ मनुष्य में ये दोनों ही बड़े मजबूत होने अनिवार्य हैं। तेज भागने से आप हाँफ न जाँय, नासिका से श्वास लें। यह स्वस्थ फेफड़ों की पहचान है। सुषुप्तावस्था में मुँह से श्वास लेने की आदत कमजोर फेफड़ों की निशानी है। स्वस्थ फेफड़े बाहर से स्वच्छ वायु अंदर लेकर रक्त की सफाई में

अहंकार एक प्रकार की मानसिक बीमारी है, चित्त की व्यग्रता अतृप्त वासनाएँ, विघ्न-बाधाओं से मिथ्या डर, कुत्सित कल्पनाएँ, कायरता आदि सब गिरे हुए स्वास्थ्य की निशानी हैं। इसके विपरीत निर्बल शरीर में भूतबाधा, भूतप्रेत के भय, विकार, काम वासनाएँ, क्रोध, ईर्ष्या, मोह इत्यादि भरे पड़े रहते हैं।

स्वस्थ रहने से पवित्र विचार आते हैं, मन प्रसन्न और शुभ कल्पनाओं, मधुर विचारों से परिपूर्ण रहता है। काम में जी लगता है, आलस्य या उदासी नहीं सताती, हृदय मुस्कराते हुए पुष्पों को देखकर उत्फुल्ल होता है। चमचमाते हुए तारकवृंद को देखकर मन चमचमाता है। हम प्राकृतिक दृश्यों को देखकर मोहित हो जाते हैं। प्रकृति का संदेश हमें हर फूल-पत्ती और पुष्प सुनाता है।

स्वास्थ्य स्वभाविक है—

यदि आप प्रकृति के नियमों का अतिक्रमण न करें, प्रकृति के परिवार के अन्य सदस्यों की भाँति सच्चाई और ईमानदारी से उनका पालन करते रहें, तो स्वभाविक रूप से आप अपनी पूरी आयु का आनंद ले सकेंगे। प्रकृति ने आपको बहुत उच्च कोटि का जीव बनाया है। प्रसन्नता का स्रोत आपके हृदय में प्रवाहित होना चाहिए। आनंद से आपका निकट संबंध होना अनिवार्य है। यदि आप प्रकृति के निकट रह सकें तो निश्चय जानिये— आपका स्वभाव सदैव शांत और गंभीर रहेगा, आपका हृदय आंतरिक आह्लाद से भरा रहेगा और आप जीवन का स्वर्गीय आनंद लूट सकेंगे।

स्वामी शिवानंदजी के शब्दों में, "प्रकृति का स्वभाव अत्यंत कठोर और दयालु है। वह अत्यंत न्यायप्रिय है, वह न्याय में क्षमा करना नहीं जानती। सदाचारियों के लिए प्रकृति परम प्यारी माता है और दुराचारियों के लिए वह पूरी राक्षसी है। वह स्वयं राक्षसी कदापि नहीं है। वह परम दयालु जगत्माता है। केवल दुराचारियों को (जो प्रकृति के नियम तोड़कर अस्वाभाविक जीवन व्यतीत

नीच कर्म के लिए सजा का विधान है। शिवानंदजी ने कहा है—"प्रकृति माता अपने हाथ में डंडा लिए, तुम्हारे मर्म स्थानों पर कठोर डंडा प्रहार करने के लिए तैयार रहती है। ज्यों-ज्यों तुम वीर्य नाश करोगे, त्यों-त्यों वह तुम्हें मारते-मारते बेदम व अधमरा कर देगी। तब भी यदि न चेतोगे या सुधरोगे, तब अंत में तुम्हारा इंतजार करती हुई मृत्यु की ओर तुम्हें, सड़े फल की तरह फेंक देगी, तुम्हें उठाकर नर्क कुंड में डाल देगी। भाइयों ! लौटो, प्रकृति की शरण में आओ। वह परम दयालु है। तुम्हारा अवश्य सुधार करेगी।"

प्रकृति और दीर्घजीवन—

विश्वास रखिये, प्रकृति के नियम पालन करने से रोगी से रोगी व्यक्ति पुनः स्वास्थ्य और आरोग्य प्राप्त कर सकता है, दुबले-पतले जर्जरित शरीर पुनः हृष्ट-पुष्ट और सशक्त बन सकते हैं। जो कार्य पौष्टिक दवाइयाँ भी नहीं कर सकतीं, वह प्रकृति के नियमानुसार रहने से अनायास ही प्राप्त हो सकता है। वेदों में निर्देश किया गया है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतंसमाः।

(यजु० ४०/२)

अर्थात् काम करते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहने की इच्छा करनी चाहिए।

'पश्येम शरदः शतं।'
जीवेम शरदः शतं।।
श्रुणुयाम शरदः शतं।
प्र ब्रवाम् शरदः शतं।।
अदीनाः स्याम शरदः शतं।
भूयश्च शरदः शतात्।।

(यजु० ३६/२४)

रोग से डरने की आवश्यकता नहीं

प्रकृति हमें बीमार नहीं पड़ने देना चाहती। साधारणतः जो लोग कुदरत के पास रहते हैं, साहचर्य बनाये रहते हैं और प्रकृति के मामूली नियमों का भी पालन करते हैं, वे बीमार नहीं पड़ते। बीमार पड़ने पर भी प्रकृति हमारी गलतियाँ सुधारने की चेष्टा करती है।

रोग प्रकृति की वह क्रिया है, जिससे शरीर की सफाई होती है। रोग हमारा मित्र होकर आता है, वह यह बताता है कि हमने अपने शरीर के साथ बहुत अन्याय किया है, अनेक कीटाणुओं को स्थान देकर विष एकत्रित कर लिया है। रोग उस आंतरिक मल का प्रतीक या बाह्य प्रदर्शन मात्र है। यह प्रकृति का संकेत मात्र है, जो हमें बताता है कि हमें अब अपनी गलतियों से सावधान हो जाना चाहिए। शरीर में स्थित गंदगी, विष, विजातीय तत्त्व या अप्राकृतिक जीवन से सावधान हो जाना चाहिए। रोग शरीर शोधन की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है।

साधारण पढ़े-लिखे या मूढ़ व्यक्ति रोगों से बुरी तरह भयभीत हो जाते हैं। वे उसके कारणों को समझने की चेष्टा नहीं करते। प्रकृति यदि अपनी ओर से बीमारियों को ठीक करने की योजना भी करती है, तब भी वे उसके मार्ग में रोक लगा देते हैं। देखा है कि अत्यधिक दवाई और इंजेक्शन इत्यादि का प्रयोग हानिकारक सिद्ध हुआ है।

स्मरण रखिये, रोग बिना कारण के कभी उत्पन्न नहीं होते। शारीरिक या मानसिक विकार उत्पन्न होते ही सर्वप्रथम आप यह मालूम कीजिए कि शरीर में किन-किन कारणों से रोग के कीटाणु उत्पन्न हुए ? क्यों आप बीमार पड़े ? प्रकृति के किस नियम की आपने अवहेलना की है ? रोग का वास्तविक कारण समझ लेना चिकित्सा की आधारशिला है।

प्रभाव दिखाता है और अंत में स्थूल शरीर में नाना रूपों में प्रकट होता है। हर एक रोगी की सर्वप्रथम मानसिक अवस्था विकृत हो जाती है। दूषित अंतःकरण, विकृत मन और अशुभ भावनायें रोगों का कारण है।

चिकित्सा के नाम पर आपको ठगा जाता है—

आज कुदरती जिंदगी को भूलकर हम चिकित्सकों के कुचक्र में फँस गये हैं। ये लोग हमें इतनी दिलचस्पी स्वस्थ करने में नहीं लेते, जितनी बीमारी को बढ़ाने में। इनका दृष्टिकोण अधिक से अधिक रुपया ऐंठना होता है।

डॉ० राम लिखते हैं कि, हमारी लापरवाही का सबसे अधिक फायदा उन लोगों ने उठाया है, जिन्होंने समाज की चिकित्सा का ठेका लिया है। जिन्न लोगों को भूख नहीं लगती, उसकी दवा तैयार करते हैं। खाना हजम नहीं होता, उसकी दवा तैयार करते हैं। काम में मन नहीं लगता, उसकी भी दवा बनाते हैं। ये धातु पुष्ट करने की ठेकेदारी लेते हैं, बालों को काला करते हैं, दाँतों को जमाते हैं, लड़के (लड़की नहीं) पैदा करवाते हैं और संसार के सब पुरुषों की नपुंसकता व स्त्रियों का बांझपन मिटाकर संसार में स्वर्ग का राज्य स्थापित कराते हैं। यह लोग संसार में मकड़ी के समान अपना जाल फैलाये हुए हैं और संसार इनके जाल में फँसा है।

मूत्र रोगों से लोगों को डराकर और भीषण, जटिल रोग बता- बताकर ये उन्हें कुकर्म में प्रोत्साहन देते हैं। ताकत की दवाइयों का व्यापार आज जितना चलता है, शायद कभी नहीं चला। दुबले-पतले व्यक्तियों को व्यर्थ ही रोगी कहकर ये अटकाये रहते हैं। गुप्त रोगों में रुपया पानी की तरह बहाया जाता है और युवक चुपके-चुपके खूब उसमें ठगे जाते हैं। हर एक साधू-फकीर, कविराज, वैद्य बना बैठा समाज को चूस रहा है।

अधिकांश दवाइयाँ ऐसी दी जाती हैं, जिनमें साधारण चीजों के अलावा कुछ भी नहीं होता। कभी-कभी पानी ही दे दिया जाता है।

रोगों तथा अस्वस्थता को निमंत्रण

ज्ञान के इस उन्नत युग में भी कुछ व्यक्ति ऐसी मूर्खताएँ करते हैं कि शरीर के भीतर मल और विष एकत्रित हो जाते हैं। ऐसा मालूम होता है, मानों वे कह रहे हों, "हे रोग, हे अस्वस्थता ! तुम आओ, मेरे शरीर में वास करो, मैं तुम्हें निमंत्रण देता हूँ। तुम्हारे लिए शरीर में उपयुक्त वातावरण, उपस्थित करता हूँ। न्योता देकर तुम्हें बुलाता हूँ। तुम आओगे, तो मैं तुम्हारी सेवा करूँगा।"

शरीर के प्रति हमारा अत्याचार—

यदि हम अपने आहार-विहार में सजग रहें, तो कोई कारण नहीं कि हम अल्पकाल में ही मृत्यु के ग्रास बनें। किंतु हम शरीर जैसे सूक्ष्म मशीन की बहुत कम परवाह करते हैं। हम यह नहीं समझते कि यह कितनी बेशकीमती है, कितनी अमूल्य है ? यदि इसका एक भी पुर्जा बेकार हो जाए, तो असंख्य धन खर्च करने पर भी वैसा पुर्जा इसमें फिट नहीं किया जा सकता। आपका दाँत टूट जाता है, आप दंतचिकित्सा से दूसरा, दाँत लगवाते हैं। वह एक खूबसूरत दाँत लगा देता है, किंतु एक हफ्ते बाद ही वह बुरा लगने लगता है, टूट जाता है या वैसी अच्छी तरह कार्य नहीं करता, जैसा प्राकृतिक दाँत करता था। जब दाँत जैसे साधारण पुर्जे की यह बात है, तो नेत्र, हृदय, फेफड़े या अन्य सूक्ष्म अवयवों की तो बात ही कुछ और है। इन्हें तो एक बार बेकार होने पर मानवीय बाजार में खरीदा भी नहीं जा सकता। स्मरण रखिये, आपका शरीर एक अमूल्य खजाना है, यह एक से एक कीमती पुर्जों से बना है, इसमें ऐसी-ऐसी विचित्रताएँ भरी हैं कि एक बार नष्ट होने पर उन्हें पुनः नहीं बनाया जा सकता।

मनोविकारों की उत्तेजना से दाहक तत्त्व बढ़ते हैं। मनोविकारों के द्वंद्व हमारी मानसिक वृत्तियाँ से संश्लिष्ट होकर रोगों की अनेकरूपता उत्पन्न करते हैं। मनोविकार हमारे रक्त में अनेक प्रकार के रसायनिक परिवर्तन किया करते हैं। जैसे, यदि हम काम वासना से विक्षुब्ध हो उठते हैं, तो रक्त में एक प्रकार की गर्मी आ जाती है, रोम-रोम तरंगित हो उठता है। यदि वासना का तांडव अधिक रहे, तो गर्मी, सूजाक, गुप्तांगों के अनेक रोग, स्वप्नदोष, बहुमूत्र और पेशाब के अनेक गुप्त रोग उत्पन्न होते हैं। क्रोध की अधिकता से रक्त में कुछ ऐसे विष उत्पन्न होते हैं, जिनसे उद्वेग बढ़ता है, त्वचा का रंग काला हो जाता है, अंग फड़कने लगते हैं, शांति, स्थिरता और बुद्धि भंग हो जाती है। मूलरूप में क्रोध भी हमारे अनेक शारीरिक रोगों का कारण बन जाता है।

मानसिक तनाव—

हमेशा किसी मनोविकार के वशीभूत रहने से अनावश्यक संघर्ष मन में चलता रहता है। भय, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, प्रतिहिंसा, लोभ, वासना इन पर नियंत्रण न होने से मनुष्य उत्तेजित बना रहता है। इच्छाओं की विभिन्नताओं के अनुसार मनोविकारों की अनेक रूपता का विकास होता है। प्रत्येक मनोविकार अपनी जटिलता उत्पन्न कर शारीरिक विकार का कारण बनता है। अप्राकृतिक अनहोनी कल्पनाएँ, पुरानी दुःखद स्मृतियों, दलित वासनाएँ दाहक तत्त्वों की अभिवृद्धि किया करती है। अपने आप पर किये गये इन अत्याचारों के हम स्वयं ही जिम्मेदार हैं। हम स्वयं ही रोगों को निमंत्रण देकर बुलाते हैं।

रोगों के प्रधान कारण—

"प्रकृति की पुकार पर जो लोग ध्यान नहीं देते, उन्हें भाँति-भाँति के रोग और दुःख घेर लेते हैं, परंतु प्राकृतिक जीवन

मिथ्या आहार—

हममें से अधिकांश व्यक्ति अपने दाँतों से कब्र खोदते हैं। अपने भोजन को ऐसा अप्राकृतिक बना लेते हैं कि पेट में एक पंसारी की दुकान बन सकती है। हमने भोजन क्षुधा निवारण के लिए नहीं, स्वाद के लिए नाना प्रकार की मिठाइयों, चटनियों, अचार, स्वादिष्ट चूरन, तले हुए पदार्थ, अभक्ष्य पदार्थों का भी उपयोग प्रारंभ कर दिया है। हमारे सामने छप्पन प्रकार के भोजनों से भरा हुआ थाल आता है और हम भूखे न होने पर भी केवल जिह्वा के स्वाद से प्रेरित होकर ठूँस-ठूँसकर खाते हैं। बनावटी रसों तथा स्वादों के प्रयोग सभ्य जगत् में चल रहे हैं। इनके मोह में पड़कर मनुष्य प्राकृतिक रसों तथा स्वाद को विस्मृत करता जा रहा है। बड़े शहरों में हलवाइयों, मिठाई वालों, अचार, मुरब्बे वालों ने नए-नए मिश्रणों से भिन्न-भिन्न वस्तुएँ तैयार की हैं। चाय, बीड़ी, सिगरेट, तंबाकू, सुपारी के बड़े-बड़े कारखाने और सजी हुई दुकानें वृहत् संख्या में दृष्टिगोचर होती हैं। फल और तरकारियों को भी इस प्रकार बनाया जाता है और इतने मसाले-खटाई इत्यादि भर दी जाती हैं कि उनका मूल स्वाद विकृत हो जाता है। खाते समय यह बात ही नहीं होती कि कौन-सी सब्जी हम खा रहे हैं ? उनके विटामिन तो प्रायः बिल्कुल ही नष्ट हो जाते हैं।

शक्कर का प्रयोग बढ़ रहा है। भिन्न-भिन्न प्रकार की चिकनाई, मांस का व्यवहार समझदार व्यक्तियों में अधिक होने लगा है। मांसाहारियों ने सुखाया हुआ मांस प्रयोग में लाना प्रारंभ कर दिया है। जहाँ संसार में खाने के लिए एक से एक अच्छी चीज विद्यमान है, वहाँ आज मांस का व्यवहार देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे मनुष्य जागकर पुनः सोने की चेष्टा कर रहा है।

पेय पदार्थों में अप्राकृतिक तत्त्व घुस पड़े हैं। स्वच्छ-निर्मल जल को छोड़कर हम सोडा, लेमन, चाय, काफी, भाँति-भाँति के

हैं। "एक चौथाई भोजन से मनुष्य का पोषण होता है और तीन चौथाई से डॉक्टरों की डॉक्टरी चला करती है।" हमारी पाचन-शक्ति के ऊपर इतना बोझ पड़ जाता है कि अजीर्ण, मंदाग्नि, उल्टी, दस्त, ग्रहणी, बुखार आदि हमें आ घेरते हैं। आवश्यकता से अधिक खाना शारीरिक एवं आर्थिक दोनों ही दृष्टियों से घृणित है। शारीरिक दृष्टि से तो यह इसलिए निंद्य है कि शरीर के अंदर कूड़ा-करकट-गंदगी का बोझ बढ़ता है और मल-निष्कासक अवयवों पर व्यर्थ का बोझ लदता है, शरीर में विष एकत्रित होकर रोग उत्पन्न होते हैं, और आर्थिक दृष्टि से इसलिए बुरा है कि मनुष्य को बहुत अधिक व्यय करना पड़ता है।

अप्राकृतिक विहार—

"विहार" का अभिप्राय है, हमारा रहन-सहन। टहलना, घूमना-फिरना, बैठना, रति-क्रीड़ा। "विहार" का हमें विस्तृत अर्थ लेना चाहिए। आज के नगरों, तंग गलियों, गंदी सड़कों, बिना रोशनदान और छोटी खिड़कियों वाले मकानों को देखिये। शरीर की प्रथम आवश्यकता है—शुद्ध, स्वच्छ और निर्मल वायु। इन गंदी गलियों में शुद्ध वायु भी मिलना एक वरदान है। आबादी अधिक होने से लोग सीलन भरे अंधेरे कमरों में इतने अधिक लोग भरे रहते हैं कि उन्हें अनेक प्रकार के छूत के रोग लग जाते हैं। व्यायाम के लिए स्थान नहीं मिलता। सोना, बैठना, भोजन पकाना, स्टोर तथा नाना वस्तुएँ रखना आदि सभी काम उसी में होते हैं। शुद्ध वायु और पर्याप्त प्रकाश न मिलना रोगों का प्रथम कारण है।

घरों के पश्चात् हम अधिक समय ऑफिसों, कल-कारखानों, दफ्तरों और दुकानों पर व्यतीत करते हैं व अप्राकृतिक ढंग से बैठते हैं, रीढ़ की हड्डी झुकाये रहते हैं, फेफड़ों में पूरी हवा नहीं भरते अधूरा श्वास लेते हैं। यथेष्ट मात्रा में जल नहीं पीते,

मजबूत बनता जायेगा, किंतु जिसे निठल्ला और बिना काम छोड़ दिया जायेगा, वह निर्बल होता जायेगा। धनी पुरुष तो शारीरिक श्रम करते ही नहीं। अतः वे सबसे अधिक गिरे हुए स्वास्थ्य के शिकार होते हैं।

विषय-वासना की अतृप्ति और आधिक्य आज जितनी है, उतनी कभी नहीं रही है। समाज में गुप्त रोग—बहुमूत्र, स्वप्नदोष, सुजाक, गर्मी, उपदंश, इंद्रिय निर्बलता इत्यादि बड़ी मात्रा में फैले हुए हैं। कामोत्तेजक घृणित साहित्य की बिक्री बढ़ रही है। तज्जनित अनाचार कामोपभोग की इच्छा, तृप्ति के नाना साधन, गुप्त व्यभिचार, भ्रष्टता, यौन रोग बढ़ती पर हैं। गंदे उत्तेजक उपन्यास कहानियाँ पढ़ने से और गंदे सिनेमा के फिल्म देखने से युवक-युवतियों की काम-वासनाएँ अल्पवय में ही उत्तेजित हो उठती हैं, वे कामोपभोग के लिए बुरी तरह लालायित रहते हैं। युद्धकालीन व्यभिचार ने समाज में मनमाना दुराचार, गुप्तरोग, अपराधों की संख्या बढ़ाई है। जो विवाहित हैं, वे पत्नी के साथ निरंतर अमर्यादित भोग याने व्यभिचार ही कर रहे हैं।

श्री बैजनाथ महोदय इस विषय में लिखते हैं—"लोग समझते हैं कि विवाह जीवन का द्वार है। उसके द्वारा मनुष्य अपने जीवनोपवन में घुसे और मनमानी विषय-विलास लूटे। पति-पत्नी के बीच भला भोग की कोई सीमा क्यों हो ? वहाँ तो एक-दूसरे की वासना की तृप्ति के लिए अपना शरीर अर्पण कर देना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है—ऐसे नर-पशुओं को अपनी पत्नी की बीमारी और गर्भावस्था का भी ख्याल नहीं रहता। वे तो विकार के कारण पागल और अंधे रहते हैं। संसार में विषय-भोग के अतिरिक्त उन्हें कुछ दिखाई नहीं देता।"

जब हम निर्बल, निःसत्व और रक्तहीन नर-कंकालों को देखते हैं, तो हमें उन पर बड़ा तरस आता है। अल्पावस्था में

शहरों में चलने वाले कल-कारखाने, मिल और फैक्टरियाँ हमारे जीवन में कृत्रिमता उत्पन्न कर रही हैं। हम रात-दिन रुपये की चिंता करते हैं; उठते-बैठते, सोते-जागते, चलते-फिरते-प्रत्येक घड़ी हमारे सामने अर्थ-चिंता रहती है। हम यह नहीं जानते कि कम पैसे से भी हम स्वास्थ्य, शक्ति, दीर्घ जीवन, सौंदर्य, प्राप्त कर सकते हैं।

प्राकृतिक जीवन ही वास्तविक जीवन है। प्रकृति तत्त्व में सभी उत्तम पदार्थों का सम्मिश्रण है। यदि हम आधुनिक सभ्यता के महारोग से अपने आपको मुक्त कर सकें और जीवन में सरलता और स्वभाविकता का अवलंबन कर सकें, तो जीवन का वास्तविक आनंद उपलब्ध कर सकते हैं। हम प्रकृति के जितना ही निकट आयेंगे, जितनी सच्चाई के साथ प्राकृतिक-नियमों का पालन करेंगे, उतने ही अंशों में स्वास्थ्य लाभ करेंगे।

स्वस्थ रहने की दिनचर्या

"भावप्रकाश" के अनुसार हम यहाँ स्वास्थ्य, सुख एवं दीर्घायु की कामना रखने वाले पाठकों के लिए प्रकृति की दृष्टि से दिनचर्या दे रहे हैं। इसे ध्यानपूर्वक अनुसरण करना चाहिए।

निरोगी कौन है ?

सुश्रुत कहते हैं—जिस मनुष्य के वात, पित्त, कफ आदि दोष, अग्नि, धातु और मल—समान में स्थित हों, जो व्यक्ति अपने शरीर के अनुसार समान रूप से क्रियाएँ करता हो और जिसके देह और मन प्रसन्न हों—वह मनुष्य स्वस्थ (निरोगी) कहलाता है।

प्रातःकाल क्या करें ?

स्वस्थ्य मनुष्य आयु की रक्षा के लिए चार घड़ी तड़के अर्थात् ब्राह्ममुहूर्त में उठे और उस समय दुःख की शांति के लिए

जीभी का प्रयोग—

जीभ साफ करने की जीभी सोने की, चाँदी की या तांबे की बनवाएँ और यदि यह न मिले, तो कोमल चिरी हुई लकड़ी की दतौन अथवा नर्म पीतल आदि की बनवावें, दस अंगुल लंबी, कोमल और स्निग्ध जीभी से जीभ के मैल को दूर करें। जीभी करने से जीभ का मैल, विरसता, दुर्गंधता और जड़ता दूर होती है।

शीतल जल से बार-बार कुल्ला करें, इससे कफ, तृषा और मल दूर हो जाता है तथा भीतर से मुख स्वच्छ होता है। थोड़े गर्म जल से कुल्ला करने से कफ, अरुचि, मैल तथा दाँतों की जड़ता दूर होती है और मुख हल्का हो जाता है। शीतल जल से मुख धोने से रक्त, पित्त और मुख के मुँहासे, झाँई इत्यादि नष्ट हो जाते हैं, थोड़े गर्म जल से कफ तथा वात दूर होती है, स्निग्धता आती है और दुःख का शोक नष्ट होता है।

तेल का उपयोग—

नित्यप्रति नाक में सरसों आदि का तेल डालने का अभ्यास करें। कफ बढ़ा हो, तो प्रातःकाल, पित्त बढ़ा हो, तो दोपहर में और वायु बढ़ी हुई हो, तो सायंकाल में नाक में सरसों का तेल डालें। नाक में तेल डालने से मुख में सुगंध आती है, शब्द में स्निग्धता होती है। इससे इंद्रियाँ पुष्ट रहती हैं और शरीर की सिकुड़नें, श्वेत बाल, झाँई उस मनुष्य को नहीं होते।

अंजन लगाने के लाभ—

सफेद सुरमा नेत्रों को सदा हितकारी है। इसलिए इसको नेत्रों में सदा लगाना चाहिए। इससे नेत्र मनोहर और सूक्ष्म वस्तु को देखने वाले हो जाते हैं। काला सुरमा भी अच्छा होता है, इसके लगाने से नेत्रों को खुजली, मैल तथा दाह नष्ट होती है और नेत्रों का पानी बहना बंद हो जाता है। रात में जागा हुआ, थका हुआ,

मालिश से लाभ—

संपूर्ण अंगों में नित्य तेल का लगाना पुष्टिकारक है, किंतु विशेष करके सिर में, कानों में और पाँवों में तेल की मालिश करें। सरसों का तेल, अग्नि के संयोग से अगरु आदि सुगंधित पदार्थों का निकाला हुआ तेल, चंपा, चमेली, बेला, जूही, मोतिया आदि पुष्पों से सुवासित किया हुआ तेल और अन्य द्रव्यों से मिलाकर बनाया हुआ तेल सर्वथा हितकारी है।

सिर में मला हुआ तेल संपूर्ण इंद्रियों को तृप्त करता है, दृष्टि को बल देता है और सिर तथा त्वचा के रोगों को दूर करता है। सिर में कोमलता आती है, आयु की वृद्धि होती है, देह पुष्ट होती है। केशों में तेल लगाने से बाल बढ़ते हैं, लंबे, नर्म, दृढ़ और काले हो जाते हैं तथा सिर में भरे रहते हैं।

नित्य कान में तेल डालने से कान में रोग तथा मैल नहीं होते तथा गरदन और हनुग्रह नामक रोग, ऊँचा सुनना तथा बहरापन भी नहीं होता। कानों में रस आदि पदार्थ डालने हों, तो भोजन के पूर्व डालें और तेल आदि सूर्य अस्त होने पर डालें। पाँवों में तेल मलना पाँवों की स्थिरता करता है, निद्रा और दृष्टि को प्रसन्न रखता है। कसरत का अभ्यास करने से और पाँवों में तेल की मालिश करने वाले मनुष्यों के पास रोग नहीं आते, जैसे गरुड़ के समीप सर्प नहीं आते।

स्नान के समय तेल का प्रयोग—

स्नान के समय तेल का प्रयोग किया हुआ रोमकूप, शिराओं के समूह और धमनियों के द्वारा संपूर्ण शरीर को तृप्त करता है और अत्यंत बलदायक है। जिस प्रकार वृक्ष की जड़ को जल से सींचने से पत्रादिक की वृद्धि होती है, उसी प्रकार मनुष्य के शरीर को तेल के द्वारा मलने से धातुओं की वृद्धि होती है। नवीन ज्वर

भिन्न-भिन्न वस्त्र तथा उनके गुणदोष—

रेशमी कपड़े खासतौर पर पीतांबर और टसर, ऊनी वस्त्र तथा लाल रंग के कपड़े वात, पित्त और कफ को दूर करने वाले हैं, इसलिए जाड़ों में ये वस्त्र पहिने। जोगिया रंग के कपड़ों से चित्त पवित्र और शीतल होता है, पित्त दूर होता है। इसलिए गर्मियों में उन्हें धारण करना चाहिए। सफेद कपड़े शुभदायक, शीतल और धूपनिवारक हैं। जो गर्म हैं न शीतल हैं—ऐसे वस्त्र वर्षाकाल में धारण करें। निर्मल और नवीन वस्त्र कीर्ति देने वाले हैं, काम को प्रदीप्त कर देते हैं, आयु को बढ़ाते हैं, शोभायुक्त करते हैं, आनंददाता हैं, त्वचा को हितकारी हैं, वशीकरण तथा रुचि उत्पन्न करने वाले हैं। श्रेष्ठ पुरुष कभी मैले वस्त्र न पहिने, क्योंकि मैले वस्त्रों से शरीर में खुजली होती है, जूयें इत्यादि जीव उत्पन्न हो जाते हैं और ग्लानि, अशोभा तथा दरिद्रता प्राप्त होती है।

भोजन के संबंध में शास्त्रीय विधि—

भोजन का समय हो तो मांगलिक पदार्थों का दर्शन करें। संसार में ब्राह्मण, गौ, अग्नि, पुष्पों की माला, घृत, सूर्य, जल और राजा—ये आठ मांगलिक हैं। इनका दर्शन करने से नित्य आयु और धर्म की वृद्धि होती है। भोजन से पहले अथवा बाद में खड़ाऊँ धारण करे क्योंकि इनसे पाँवों के रोग दूर होते हैं, शक्ति प्राप्त होती है, नेत्रों के लिए हितकारी हैं और आयु को बढ़ाने वाले हैं।

जो मनुष्य भूख लगने पर नहीं खाते—उनके शरीर की जठराग्नि मंद हो जाती है। शरीर की अग्नि खाये हुए आहार को पचाती है। आहार न मिलने से वात, पित्त, कफ को पकाती है। दोषों का क्षय होने पर धातुओं को पचाती हैं और धातुओं का क्षय होने पर प्राणों को पचाती है, अर्थात् प्राणों का नाश करती है।

अग्नि मंद हो जाती है, मध्य में पीने से अग्नि दीप्त होती है और अंत में पानी पीने से शरीर मोटा होता है।

भोजन के पश्चात् दूध क्यों पियें ?

शिष्ट पुरुष भोजन के अंत में दूध पीते हैं। दूध स्वाद रसान्वित, स्निग्ध, सामर्थ्यवान्, धातुवर्धक वायु तथा पित्तहारी, वीर्यवर्द्धक, कफकारी, भारी और शीतल है। हम नित्य प्रति दाह कारक जो-जो अन्न खाते हैं, उनकी दाह शांत करने के लिए दूध पीना जरूरी है। ब्रह्मपुराण में कहा गया है—"जिसके अंत में दूध पीने को मिले, ऐसा भोजन करे और जिसके अंत में दही खाया जाय, ऐसा भोजन न करे। दूध आदि मधुर भोजन, खट्टे, खारी और चरपरे भोजन से उत्पन्न हुए पित्त की वृद्धि को दूर करता है। भोजन के बाद नमकीन पदार्थ खाकर कुल्ला करें, दाँतों से भोजन के टुकड़े निकाल डालें। आचमन के पश्चात् भीगे हाथों से आँखों का स्पर्श करें। भोजन के पश्चात् नित्य सुख प्राप्त होने के लिए अगस्त्य आदि का स्मरण करें। भोजन के बाद सोना नहीं चाहिए।

भोजन के पश्चात् का कार्यक्रम—

भोजन के बाद धीरे-धीरे सौ कदम चलना चाहिए, इससे भोजन किया हुआ अन्न उदर में शिथिल होता है और गर्दन, घुटने तथा कमर को सुख होता है। भोजन करके बैठ जाने से शरीर में आलस्य और तंद्रा उत्पन्न होती है, थोड़ी देर पश्चात् विश्राम करने से शरीर पुष्ट होता है, आयु बढ़ती है। खाट त्रिदोषनाशक है, पृथ्वी पर सोना पुष्टिकारक है। भोजन के पश्चात् भी मन को प्रिय लगें ऐसे शब्द गाना-बजाना, सुंदर वस्तु को छूना, रूप, रस, गंध का सेवन करें, क्योंकि इनका सेवन करने से अन्न भली-भाँति ठहर जाता है।

पगड़ी और जूता से लाभ—

पगड़ी धारण करने से कांति बढ़ती है, केशों को हितकारी तथा पित्त, वात तथा कफ को दूर करने वाली है। पगड़ी हलकी

इस प्रकार सदा सदाचार में तत्पर रहकर दिन व्यतीत करें और रात्रि को रात्रि के समयानुकूल कार्य करें। उक्त नियमों के अनुसार करने वाले को आयु, आरोग्यता, प्रीति, धर्म और यश की प्राप्ति होती है।

संध्या में यह कार्य न करें—

विद्वान् लोगों को संध्याकाल में आहार, मैथुन, निंद्रा, अध्ययन और मार्ग चलना—ये पाँच कार्य नहीं करने चाहिए। सायंकाल में भोजन करने से व्याधि उत्पन्न होती है, मैथुन करने से गर्भ में विकार आता है, पढ़ने से आयु का नाश होता है और मार्ग चलने से भय उत्पन्न होता है।

रात्रि में समय पर सोना—

रात्रि में समय पर सोने से धातुओं में समता आती है, आलस्य दूर होता है और पुष्टि की प्राप्ति होती है, रंग निखर आता है, उत्साह बढ़ता है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है। जो मनुष्य शयन के समय बिनौले के पत्तों का चूर्ण शहद में मिलाकर चाटे, तो वह तंद्रा उत्पन्न करने वाला वायु के वेग के निरोध से सुखपूर्वक शयन कर सकता है।

रात्रि के अंत में पानी का नियम—

जो मनुष्य सूर्योदय के समय आठ अँजुली बासी पानी पीने का नियम करता है, वह रोग और जरा से छूटकर सौ वर्ष जीवित रहता है। जब रात्रि का चौथा पहर आरंभ हो, तो इस जल को पीने का समय जानना चाहिए। इस अभ्यास से बवासीर, सूजन, संग्रहणी, ज्वर, जठर, जरा, कोढ, पेट के विकार मूत्रघात, रक्तपित्त, कर्ण रोग, कमर का दर्द, नेत्र रोग नष्ट हो जाते हैं। प्रातःकाल उठकर नित्य नाक से पानी पीने से बुद्धि पूर्ण होती है, नेत्रों की दृष्टि गरुड़ के समान होती है। संपूर्ण रोग नष्ट होते हैं।

का अपव्यय भला कैसे पूरा हो सकता है ? इसी के आधीन मनुष्य की संपूर्ण शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ, बल, बुद्धि, आयु रहती है। व्यभिचारी पुरुष क्षणिक सुख के लोभ में आकर वीर्य नाश नाना विधियों से कर डालते हैं। यह एक प्रकार की आत्म हत्या ही समझिये।

(२) **नशेबाजी**—संसार में जितने मादक द्रव्य हैं, उनका शरीर पर बड़ा घातक प्रभाव पड़ता है। हम मानते हैं कि कभी-कभी दवाई के रूप में भी इनका उपयोग होता है किंतु आजकल तो धड़ाधड़ मादक द्रव्यों का प्रचार बढ़ रहा है। मनुष्य बुद्धि शून्य होकर राक्षस बना दीखता है।

शराब को लीजिए। बुरी समझते हुए भी अनेक व्यक्तियों ने इसे अपना लिया है। संसार के डॉक्टर आज इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि शराब का विष, चाय, न्यूमोनिया, विषम ज्वर, हैजा, लू और पेट, जिगर, गुर्दा, हृदय, रक्त वाहिनियाँ, स्नायु विकार तथा मस्तिष्क के कई रोगों का जनक है। शराब का उपयोग साधारण श्रमजीवी उत्तेजना के लिए करते हैं। उन्हें मालूम नहीं कि यह शरीर परमेश्वर का मंदिर है। इसमें परमेश्वर विराजते हैं। प्रकृति मनुष्य की माता भी है और गुरु भी। प्रकृति ने शरीर ही में ऐसी-ऐसी गुप्त शक्तियाँ भरी हैं कि उन्हें शराब जैसी उत्तेजक वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए। शराबखोरी विनाश है। श्री वैजनाथ महोदय ने लिखा है "शराब कार्य-शक्ति को घटाती है, रोजी छूट जाती है तो मनुष्य बाल बच्चों का पोषण नहीं कर पाता, गृह सौख्य का नाश हो जाता है। मानवजाति के सर्वनाश के लिए ही शराब की उत्पत्ति हुई है और वह इस पर तुली हुई है। शराब और व्यभिचार में गाढ़ी मित्रता है। जहाँ-जहाँ शराब है, वहाँ-वहाँ, व्यभिचार भी जरूर होता है। शराब पीते ही नीति-अनीति की भावना तथा आत्मसंयम धूल में मिल जाता है और स्त्री-पुरुष

चाय और काफी पीने से दाँतों की जड़ें कमजोर हो जाती हैं। स्नायुओं को क्षणिक उत्तेजना तो मिलती है, किंतु शक्ति या रक्त नहीं बढ़ने पाता।

स्मरण रखिये, मादक पदार्थ विषैले हैं। आपकी आयु-बल, बुद्धि, उत्साह और नैतिकता का ह्रास करने वाले हैं। इनका पान जहर का पान है। खतरों से भरा है, आत्महत्या के बराबर है। आप जानते-बूझते क्यों विषपान कर रहें हैं ?

(३) व्यभिचार—यह पाप वह भयंकर राक्षस है, जो देखते-देखते मनुष्य के पतन का कारण बनता है। आज का बहुत-सा साहित्य हमारी भोली जनता को मृत्यु के मुँह में ढकेल रहा है। व्यभिचार वह सामाजिक बुराई है, जो प्रत्येक राष्ट्र के लिए हानिकारक है। स्त्री-पुरुष के जीवन तत्त्व को नष्ट करने के अनेक नए तरीके निकाल लिए हैं, जिन्हें कहना और चर्चा करना भी पाप है। स्मरण रखिये, आप व्यभिचार कर जगत् की आँखों से बच सकते हैं, किंतु प्रकृति बड़ी कठोर है। व्यभिचार का दंड उसके दरबार में गर्मी, सुजाक, स्वप्नदोष, नपुंसकता, नामर्दी इत्यादि मूत्र रोगों के रूप में मिलता है। घर का गंदा कामोत्तेजक वातावरण, सिनेमा, दुश्चरित्र व्यक्ति, अश्लील चित्र-पुस्तकें इत्यादि से बड़े सावधान रहें। इनमें लिप्त होकर आत्म-हत्या न कर बैठें।

(४) चटोरापन—कुछ लोग चाट पकौड़ी तरबतर मिठाईयाँ, बाजारू मसालेदार पकवान, दाल-सेब इत्यादि आवश्यकता से अधिक खाते हैं। भूख न होने पर भी पेट को इन जायकेदार वस्तुओं से भर डालते हैं। आवश्यकता से अधिक केवल स्वाद के लिए खाना, अपनी कब्र दाँतों से खोदना है। बड़े शहरों में रहने वाले फैशनेबिल व्यक्तियों की चटोरेपन की आदत बड़ी भारी कमजोरी है। अतः अनियमित आहार-विहार न कर बैठें। बहुत सोच-समझकर चलें।

उपरोक्त सभी बातें—अपव्यय, वीर्यपात, नशेबाजी, पापकर्म, कुढ़न, निराशा, मृत्यु का भय, चटोरापन, अनियमित आहार-विहार आपके भीतरी शत्रु हैं। उन्हें अपनी आदत और स्वभाव में सम्मिलित कर आत्महत्या मत कीजिये।

हास्योपचार सर्वोत्तम है

प्रसन्नता जंतुनाशक औषधि है, जिस व्यक्ति ने यह तत्त्व सर्वप्रथम मालूम किया होगा उसकी गिनती महाचिकित्सकों में होनी चाहिए। हास्य तथा प्रसन्नता शरीर तथा मन पर आश्चर्यजनक प्रभाव डालते हैं और शोक, भय, चिंता, क्लेश जैसी प्राणघातक वृत्तियों का उन्मूलन क्षण भर में कर डालते हैं। आनंद ईश्वरीय गुण है। चिंता, क्लेश इत्यादि आसुरी तत्त्व हैं। ईश्वरीय गुण का प्रतीक—आनंद, शरीर में मधुर रस उत्पन्न करता है और किसी अव्यक्त मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया से शरीर और मन पर तत्काल शांति का अलौकिक प्रभाव डालता है। जिस समय आनंद तथा प्रसन्नता अपना प्रभाव प्रकट करते हैं, तो समस्त प्रतिकूल प्रसंग विलीन हो जाते हैं। शरीर के अणु-अणु में नवोत्साह का संचार हो उठता है।

हँसने से तात्पर्य है कि आपके सुख की कली फूल की पंखुरी की भाँति खिल उठे, रोम-रोम में नव स्फूर्ति दौड़ जाए, जीवन रस से, नई शक्ति से, ओत-प्रोत हो उठे। मन की दुर्बलता, क्लेश, चिंता, दुःख की मलिनता या विकार धुल जाएँ। मुस्कराहट, ज्ञान-तंतुओं में जो कुछ दुर्बलता अथवा चिंता होती है उसे तत्काल दूर करती है। आनंद का प्रभाव शरीर तथा मन के कण-कण में होता है। जिस जगह औषधि लाभ नहीं पहुँचाती, जहाँ इंजेक्शन, कुनैन या अन्य कृत्रिम साधन कार्य नहीं करते, वहाँ हास्य भाव अपना करता है।

खुलकर हँसने से फेफड़े, पेट आदि के आंतरिक अवयवों को व्यायाम प्राप्त होता है। हृदय अधिक तीव्रगति से कार्य करने लगता है। रक्त का प्रवाह बढ़ जाता है, हास्य नेत्रों की शक्ति को तेजवान् करता है, छाती फैलती है और शरीर के प्रत्येक अंग को स्वास्थ्यप्रद गर्मी पहुँचती है। कठिन परिश्रम के मध्य में खुलकर हँस लेने से, मस्तिष्क को बहुत कुछ विश्राम प्राप्त हो जाता है, थकावट दूर हो जाती है और पुनः नवीन जोश से काम में भी जी लग जाता है।

हास्योपचार के लिये सहनशीलता की आवश्यकता है। जो जरा-सी बात पर उद्विग्न हो उठता है, वह कैसे हँसकर रोग दूर कर सकता है ? हँस वही सकता है, जिसमें दूसरों के अपराध क्षमा कर टाल देने की शक्ति हो, प्रतिहिंसा की ज्वाला हृदय में न सुलगती हो। यदि आपके विरुद्ध कोई अपशब्द कहे तब भी उद्विग्न न हों। यदि कोई आपको रुलाने के लिए तैयार बैठा हो, हानि का हिमालय टूट पड़ने को हो, तो भी हँसें।

आप हँसना सीखिये। दूध पीने वाला बालक जैसे निर्दोष हँसी हँसता है, वैसी ही हँसी, मस्ती बिखेरने वाली हँसी सर्वोत्तम दवा है। हास्य सेवन का आनंद लें। हँसने वालों का संग करें, आनंदजनक भविष्य को ही अपने सामने रखें, प्रत्येक पहलू में आनंद ही देखें, बरतें, सुनें और सुनायें। हास्य ही आपके दुःख-दर्द की एक मात्र दवा है।

हँसना और प्रसन्न रहना आप अपने स्वभाव का एक अंग बना लीजिए। खुशी में, सफलता में, प्राप्ति में, संपन्नता में तो हर किसी को हँसी आती है, असंस्कृत मनुष्य भी प्रसन्न होते हैं, इसमें कोई विशेष बात नहीं। आपको जिस कलापूर्ण हँसी का अभ्यास करना है, वह है हर स्थिति की प्रसन्नता। जब परिस्थितियाँ आपके विपरीत हों, असफलता का अंधकार छाया हुआ हो, हानि हो रही